'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १२१ } वाराणसी, गुरुवार, २२ अक्टूबर, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

सर्व-सेवा-संघ की बैठक में

पठानकोट (पंजाब) २३-९-'५९

लोकशाही की बुनियाद

इन चार-पाँच महीनों में मुल्क में कई मसले पेश आये हैं, जिनपर लोगों का ध्यान लगा रहा है। अखबारों में भी उनकी बहुत ज्यादा चर्चाएँ चली हैं। लेकिन अक्सर इन विषयों पर मैंने कोई खास अभिप्राय जाहिर नहीं किया। मेरी यात्रा चलती ही रही, परन्तु इसके माने यह नहीं कि इन मसलों पर मैंने सोचा नहीं, या सोचता नहीं था। लेकिन मेरा विश्वास यह है कि ऐसे मसले पैदा होने ही वाले हैं। जब तक सियासी ढंग से सोचा जायगा, तब तक ये मसले हल होनेवाले नहीं हैं। साइन्स के जमाने में पुरानी सियासत इतनी पुरानी हो चुकी है कि वह छोड़नी ही होगी, तभी इन्सान आगे बढ़ेगा, नहीं तो नये-नये मसले तो पैदा जरूर होंगे और पुराने मसलों का हल नहीं निकलेगा। जितना मैं चिन्तन करता हूँ, उतना मैं इसी नतीजे पर आता हूँ।

अभी मैं कश्मीर गया था तो वहाँ भी मुझे इसी चीज का दर्शन हुआ और मैंने ये बातें बार-बार लोगों के सामने रखीं। यह मेरी खुशनसीबी है, आप लोगों की और हमारी जमात की, याने सर्वोदय का विचार माननेवालों की खुशनसीबी है कि वहाँ जिन-जिन भाइयों से, जमातों और तबकों से बात करने का मुझे मौका मिला, उन सबने मेरे सामने दिल खोलकर बातें रखीं और कभी किसी प्रकार का कोई संकोच महसूस नहीं किया, यद्यपि वे लोग आपस-आपस में कभी भी खुलकर बात नहीं करते थे, और कश्मीर की हालत ऐसी है कि वे लोग एक-दूसरे से कतराते ही नहीं थे, बल्कि डरते भी थे, इसलिए एकान्त के सिवाय बात करना उनके लिए मुमकिन नहीं था। लेकिन जब कभी वे मेरे सामने सियासी चीजें रखते थे तो मैं उन चीजों पर सीधा प्रहार करता था और मुझे कहने में खुशी है कि बिलकुल ऐसे लोग कि जिनके लिए मैंने कतई आशा नहीं रखी थी कि वे मेरी चीज समझेंगे, वे भी उसे समझे और मुतस्सर हुए, उनके चित्त पर उसका परिणाम हुआ। आखिर कुछ लोगों ने मुझसे कहा कि इस प्रकार साफ-साफ बात हमारे सामने रखनेवाला और पूरी हमदर्दी के साथ पेश आनेवाला शख्स अभी तक कश्मीर में नहीं आया।

मसलों के हल का उपाय

जब वहाँ के लोगों ने मुझे सुनाया कि कश्मीर का एक मसला है और उसके तरह-तरह के हल जो उन्हें सूझे थे और उन्होंने सोचे थे, वे मेरे सामने रखे तो उन सबको मैंने तोड़ा और उन्हें स्पष्ट दर्शन कराया कि ये मसले जिस तरह आप सुलझाना चाहते हैं, उस तरह से सुलझते हैं ही नहीं, बल्कि दिन-ब-दिन हर छोटा-सा मसला छोटा नहीं रहेगा, सीमित नहीं रहेगा, बल्कि अन्तर्राष्ट्रिय रूप लेगा और पेचीदा बनता जायगा। इसलिए ऐसे सब मसले हल करने के लिए मन के ऊपर उठना चाहिए। अभी हमारा मन जिस स्तर पर काम करता है, उसके ऊपर के स्तर पर सोचना होगा। इन मसलों को हल करने का यही एकमात्र उपाय है। जब तक हम पुराने मन से काम करेंगे, तब तक इस साइन्स के जमाने में मसले हल करने में हम नाकाम साबित होंगे और खुशी की बात है कि यह मेरी बात उन लोगों को सोचने लायक मालूम हुई और कश्मीर से मैं कुछ आत्म-विश्वास बढ़ाकर आया हूँ। आत्म-विश्वास दो प्रकार का होता है। एक आत्म-साक्षात्कार से होता है, जो अन्दर से होता है और दूसरा विश्व-साक्षात्कार से होता है, या सामाजिक भाषा में कहना हो तो लोक-साक्षात्कार से होता है, जो बाहर से प्राप्त होता है। पहला आत्म-विश्वास तो लेकर ही मैं वहाँ गया था। लेकिन दूसरे प्रकार का आत्म-विश्वास वहाँसे लेकर आया हूँ और अपने लिए जो शक्ति का भान मुझे बाहरी दृष्टि से नहीं था, वह कश्मीर की यात्रा के बाद हुआ।

मैंने कश्मीर में एक समीकरण ही रखा था कि साइन्स और रूहानियत (आध्यात्मिकता) के जोड़ से सर्वोदय होगा, साइन्स और सियासत (राजनीति) के जोड़ से सर्वनाश होगा।

इन दिनों हिन्दुस्तान में जो बहुत से मसले पैदा हुए हैं, उनके बारे में मैं सोचता रहा हूँ, लेकिन मेरा विश्वास हो गया है कि अब सियासत (राजनीति) में जो लोग पड़े हुए हैं या पड़ेंगे, उनमें वह शक्ति नहीं है कि मसले हल करें। उनमें वह शक्ति आ सकती है, अगर भगवान उन्हें सियासत को छोड़ने की शक्ति दें। लेकिन जब तक सियासत को छोड़ने का विचार उनके मन में नहीं आता है, तब तक नतीजा यही होगा कि किसी भी शख्स के शब्द पर देश में श्रद्धा बनी नहीं रहेगी। देश में श्रद्धा का

www.vinoba.in

न होना, शब्द की श्रद्धा को खोना, एक बहुत बड़ी ताकत को खोना है।

गांधीजी के जमाने में एक बहुत बड़ी बात हुई कि कम-से-कम उनके शब्द पर लोगों का इतना विश्वास हुआ कि चाहे उनके विचार किसीको स्वीकार करने लायक न मालूम हों तो भी गांधीजी के लिए हिन्दुस्तान के लोगों के मन में यह श्रद्धा पैदा हुई कि वे जो बोलते हैं, पूरे दिल से बोलते हैं और उनके शब्द के अन्दर दो अर्थ नहीं होते हैं, जो अर्थ प्रकट होता है, वही उनके मन में होता है और उसी श्रद्धा से हिन्दुस्तान आगे बढ़ा।

शब्द-शक्ति की प्रतिष्ठा

मुझे याद है कि जब रौलेट ऐक्ट के खिलाफ आन्दोलन चल रहा था, उस वक्त बापू को पंजाब जाने से रोका गया था, तब हिन्दुस्तान में दंगे-फसाद शुरू हुए और ऐसे काम हुए कि जिससे गांधीजी के दिल को दुःख पहुँचा। उस वक्त हम साबरमती आश्रम में थे। अहमदाबाद शहर में भी उस वक्त दंगे हुए तो हम वहाँके लोगों को समझाने गये कि 'भाइयो, गांधीजी का विचार यह नहीं था, जो आप कर रहे हैं।' जिन्होंने ये दंगे करने में हिस्सा लिया, वे बुजुर्ग थे और हम तो लड़के थे। उन भाइयों ने हमें जवाब दिया कि "धर्मराज शूँ बोले, एनो अर्थ तो भीम जाणे"—याने युधिष्ठिर क्या बोलता है, इसका अर्थ तो भीम जानता है। याने राजनैतिक नेता जो बोलते हैं, उसका अर्थ दूसरे ढंग से करना होता है, ऐसा तब तक माना गया था। सियासत में अक्सर यह कहा जाता है कि उत्तम राजनैतिक नेता वह है, जिसके शब्दों के अनेकविध अर्थ निकलते हैं। जैसे वेदों के मन्त्रों के अनेकविध अर्थ होते हैं, वैसे ही उसके मन में एक अर्थ छुपा हुआ होता है और दूसरा प्रकट होता है। इस तरह जो नेता कर सकता है, वही वास्तव में अक्लवाला नेता है, ऐसा माना जाता है। गांधीजी के लिए भी उन लोगों ने माना कि उनकी अहिंसा की बात ऊपर-ऊपर की होगी। देश हिंसा के लिए तैयार नहीं है, इसलिए उन्हें अहिंसा की भाषा बोलनी पड़ती है, ताकि कानून के पंजे में हम न आयें, लेकिन वास्तव में हिंसा करना ही ठीक है। इस तरह लोग मानते थे, लेकिन जब बापू ने उन दंगों के बाद उपवास किये, उन्हें क्लेश हुआ तो उन उपवासों का परिणाम यह हुआ कि बापू के लिए यह विश्वास जनता में पैदा हुआ कि यह शख्स जो बोलता है, वही उसके मन में है। याने शब्द-शक्ति काम करने लगी। तब तक शब्द-शक्ति काम ही नहीं करती थी।

लोकशाही के लिए खतरा

आज हमारे सियासी ढंग से सोचनेवाले जो भी नेता, जो भी बयान पेश करते हैं, उसमें उनके कोई हेतु होते हैं, ऐसा मानकर लोग उनके विषय में शंकाकुल रहते हैं। आज फिर से यह हालत हो गयी है कि हिन्दुस्तान में सियासी नेताओं के शब्दों के लिए लोगों के मन से श्रद्धा उठ गयी है। यहाँ यह हालत है, वहाँ देश की शक्ति आगे बढ़ने का रास्ता रुक जाता है। अभी केरल के मामले में क्या हुआ, आपने देखा। ऐसे ही दूसरे कई मामलों में हुआ है। इन मामलों में जो-जो बनाव बनते हैं, उनकी सफाई में जो-जो कहा जाता है, वह ठीक ही कहा जाता है, जैसा होता है, वैसा ही कहा जा रहा है, जो कहा जाता है, वही कहनेवालों के मन में होता है, ऐसा विश्वास लोग नहीं रखते हैं। हमारे ऊँचे-से-ऊँचे नेताओं के लिए भी आज यह विश्वास नहीं रहा है। यहाँ तक शब्द-शक्ति क्षीण हो चुकी है। मैं मानता हूँ कि डेमोक्रेसी के लिए, लोकशाही के लिए यह बहुत ही खतरनाक बात है।

लोकशाही सिर्फ कोई बाहरी योजना नहीं है। उसमें शब्द-शक्ति का अधिष्ठान बहुत महत्त्व रखता है। जहाँ हम हर मनुष्य को मतदाता मानते हैं और हरएक के लिए एक ही वोट का अधिकार मानते हैं, वहाँ हम बहुत ही बुनियादी विश्वास पर काम करते हैं, याने सबमें एक मानव-आत्मा है और उस मानव-आत्मा की कीमत समान है, यह बुनियादी विश्वास लोकशाही के मूल में है। मानव-आत्मा की योग्यता का नाप हम कम-बेसी नहीं कर सकते हैं, समान ही कर सकते हैं, यह विश्वास जो वेदान्त में है, वही लोकशाही के मूल में है। वह सारा का सारा बुनियादी विचार ही खत्म हो जाता है, जहाँ शब्द-शक्ति कुंठित हो जाती है। और राजनीति में सबसे बड़ी हानि यही होती है कि उसमें शब्द-शक्ति कुंठित होती है, फिर चाहे वह राजनीति किसी भी ढंग की हो।

हमें समझना चाहिए कि जहाँ शब्द-शक्ति कुंठित हो जाती है, वहाँ शस्त्र-शक्ति के सिवाय तीसरी कोई शक्ति सामने नहीं आ सकती है। आज दुनिया के कई देशों में जो राज चला है, वह शस्त्र-शक्ति का ही राज्य है। उसका और कोई कारण नहीं है, सिवाय इसके कि शब्द-शक्ति कुंठित हो रही है। अपने देश में भी यही हो रहा है। ऐसी हालत में डर है कि जनता और नेताओं के बीच परदा बना ही रहेगा और हर बात का सबूत प्रत्यक्ष कृति से ही माना जायगा। शब्दों से मिलनेवाला सबूत माना नहीं जायगा तो उस हालत में चूँकि शस्त्र-शक्ति ही एक ऐसी शक्ति है, जो अपना सबूत प्रत्यक्ष में पेश करती है—उसका नतीजा जो होता है, वह प्रत्यक्ष सामने आता है, उसमें संशय की गुंजाइश नहीं रहती है—इसलिए उस शक्ति को बढ़ावा मिलेगा, यह डर है। शस्त्र-शक्ति से एक किला या कोई जगह फतह कर ली तो एक कृति हो गयी। उसमें संशय का विषय नहीं रहा। इस तरह जहाँ साक्षात् कृति होती है, वहाँ विश्वास होता है। लेकिन उस कृति के पहले शब्द की ही शक्ति होती है तो हिंसक कृतियाँ टल सकती हैं। सब बातें आपके सामने मैं इसलिए रख रहा हूँ कि आज हमने हिन्दुस्तान में शब्द-शक्ति खोयी है, इसका भान हमें रहना चाहिए।

जब मुझसे कहा जाता है कि आप किसी विषय पर 'स्टेटमेंट' क्यों नहीं देते, अपना मत-प्रदर्शन क्यों नहीं करते, खास कर इन दिनों जो बनाव बनते हैं, उनके बारे में कुछ क्यों नहीं कहते? तो मैं कहता हूँ कि यह तो चलता ही रहता है। मेरा जवाब यह है कि मैं अपनी शब्द-शक्ति कुंठित नहीं करना चाहता हूँ। मेरा उसपर बहुत ज्यादा विश्वास है। अगर मैं शब्द-शक्ति का विश्वास छोड़ूँ तो मौन के सिवाय दूसरी कोई शक्ति मेरे लिए उपलब्ध नहीं होगी और उसके विकास के लिए एक स्वतंत्र साधना करनी होगी। लेकिन सामाजिक क्षेत्र में शब्द-शक्ति एक बहुत बड़ी शक्ति है। इसलिए आपके और हमारे शब्द जैसे मिथ्या न हों, वैसे ही वृथा भी न हों। हमसे असत्य का उच्चारण न हो, इसको तो हम समझते हैं, लेकिन वह नाकाफी है। हमारे शब्दों की शक्ति बनी रहे, व्यर्थ न हो, यह भी जरूरी है। जैसे रामचन्द्र के बारे में प्रसिद्ध है :

'द्विः शरं नाभिसंधते। रामो द्विर् नाभिभाषते।'—राम दो दफा बाण छोड़ता नहीं और दो दफा बोलता नहीं। जैसे उसका

www.vinoba.in

बाण अचूक है याने वह छूटा तो उसका परिणाम होने ही वाला है, वह 'राम-बाण' ही कहलाता है, वैसे ही उसका कोई शब्द निकला तो पूरी ताकत के साथ निकलता है, उसका भी परिणाम होने ही वाला है। इन दिनों इस चीज की बहुत जरूरत है।

आप एक छोटी-सी जमात बना रहे हैं। वह छोटी है, लेकिन देश को अगर कोई जमात बचा सकती है तो यही जमात बचा सकती है, ऐसा विश्वास देश के लोगों के मन में पैदा हुआ है। लोगों ने हमपर बहुत ज्यादा विश्वास रखा है, हमारी योग्यता से ज्यादा विश्वास रखा है, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन उन्होंने यह विश्वास रखा है तो आपकी जमात अब जो भी शब्द बोलेगी, वे शब्द मिथ्या तो होंगे ही नहीं, पर जैसे व्यर्थ नहीं होंगे, वैसे ही द्व्यर्थ भी नहीं होंगे। याने जैसे वे निरर्थक नहीं होंगे, वैसे ही दो अर्थवाले भी नहीं होंगे।

इन दिनों बहुत चर्चाएँ चलती हैं और हम सबको कुछ-न-कुछ बोलने का मौका आता है। मैं कहता हूँ कि ऐसी चीज बोलो, जिसमें किसीको संदेह पैदा न हो, विश्वास पैदा हो। ऐसा कुछ बोल सकते हो तो बोलना चाहिए। शब्द बोलने में कोई मजा आता है, इसलिए हम नहीं बोलते हैं, बल्कि दुनिया में उसका कुछ-न-कुछ उपयोग हो, इसलिए बोलते हैं। इसलिए हमारा शब्द नपा-तुला होना चाहिए, अत्यन्त परिमित होना चाहिए। कभी द्व्यर्थ भी नहीं होना चाहिए याने उसका कभी संशयार्थ निकले, ऐसा संभव ही नहीं होना चाहिए। हमारे वचनों के लिए लोगों के मन में जहाँ निःसंशयता हो, वहाँ और उतने ही प्रसंगों में हम बोल सकते हैं। अन्यथा शब्द-शक्ति जो कुंठित हुई है, उसे हम और कुंठित बनायेंगे और हम भी संशय-पात्र बनेंगे। हमारे लिए यह संशय पैदा होगा कि इन लोगों ने सियासत छोड़ी है, ऐसा ये कहते तो हैं, लेकिन उनके दिमाग में अभी भी सियासत काम करती है। लोगों के मन में हमारे लिए ऐसा आया तो हमारे लिए उन्होंने जो श्रद्धा रखी है, उसे वे खो बैठेंगे। अगर सर्वोदयवालों पर लोग श्रद्धा खो बैठेंगे तो हिन्दुस्तान में अहिंसा का तरीका आप ला सकेंगे, यह फिर संभव नहीं होगा।

लोकशाही और मिलीटरी राज

कई दफा चर्चा चलती है कि लोकशाही के बचाव के लिए उपाय ढूँढ़ने चाहिए। इसके कई उपाय हो सकते हैं। लेकिन समझने की जरूरत है कि आखिर लोकशाही को खतरा है तो यही है न कि मिलीटरी का राज आयेगा? इसपर मैंने विनोद में कुछ कहा था, जिसे मैं यहाँ दुहराना चाहता हूँ, क्योंकि उस विनोद को मैं व्यर्थ या द्व्यर्थ नहीं मानता हूँ, बल्कि सार्थ और एकार्थ मानता हूँ। मैंने कहा था कि आज के जमाने में, जब कि मनुष्य के विचार बहुत आगे बढ़े हुए हैं और फ्रांस जैसे राष्ट्र भी लश्कर के हाथ में जाते हैं, उसकी वजह यही है कि वह शब्द-शक्ति को खोये हुए हैं। सन्त्रस्त जनता इस स्थिति से मुक्त होना चाहती है और यह तो मानना ही होगा कि मिलीटरी का राज्य पक्षमुक्त राज्य होता है, यद्यपि वह अहिंसक नहीं होता है।

आज दुनिया में अहिंसक राज्य है कहाँ? यह मानना कि अहिंसक राज्य के नजदीक-से-नजदीक अगर कोई अवस्था है तो आज जो लोकशाही चल रही है, वही है,—बावजूद उसकी खामियों के वही व्यवस्था अहिंसक व्यवस्था के नजदीक है—यह मानना एक अर्थ में गलत नहीं है, लेकिन दूसरी दृष्टि से निरर्थक है। मैं खाने बैठा हूँ और मेरी थाली में ईंट परोसी गयी है। मुझसे कहा जाता है कि रोटी से पत्थर जितना दूर होता है, उतनी दूर ईंट नहीं है। पत्थर की बनिस्बत ईंट रोटी से कुछ नजदीक की चीज है। ऐसा कोई कहे तो हम क्या जवाब देंगे? यही न कि हम खाने के लिए बैठे हैं तो हमें रोटी ही चाहिए, अगरचे पत्थर की तुलना में ईंट रोटी के नजदीक की चीज होगी, पर खाने का जहाँ तक ताल्लुक है, वैसा मानने में कोई सार नहीं है। इसलिए जहाँ शब्द-शक्ति कुण्ठित हुई, वहाँ आधार शस्त्र-शक्ति का ही होगा, इसे हमें समझना चाहिए। अगर हम चाहते हैं कि शस्त्र-शक्ति का आधार न रहे तो सिर्फ लोकशाही के बाहरी ढाँचे की दुहाई देने से काम नहीं चलेगा। हमें यह करना होगा कि शब्द-शक्ति याने परस्पर विश्वास की शक्ति बनी रहे।

यह शक्ति तभी बनी रहेगी, जब हमारे शब्द मन के स्तर से नहीं, उससे ऊँचे स्तर से निकलें। तिब्बत के मामले के सिलसिले में मैंने कई दफा कहा है कि इन दिनों हमारे जो मसले बनते हैं, वे अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं, याने उनमें दूसरी बाजू भी होती है, इसका हमें खयाल रखना चाहिए। इसलिए इस बात की बहुत जरूरत है कि हमारा मन क्षोभ का अनुभव न करे। अक्षोभ्यता की आज बहुत जरूरत है, साइन्स के जमाने में यह एक शक्ति है। अगर हमारे चिंतन में कहीं क्षोभ रहा तो उसके साथ आसक्ति आयेगी और हम ऐसी बात बोलेंगे, जो मानसिक स्तर की होगी और मानसिक स्तर की जो भी बात बोली जायगी, उसकी दूसरी भी बाजू होगी और उस बाजू से भी मानसिक स्तर पर से ही बोला जायगा।

तिब्बत की जो बात हुई, उसपर मैंने बहुत सोचा, लेकिन फिर भी मेरा मन तटस्थ रहा। मैं मानता हूँ कि अब जो हमारे सामने हिन्दुस्तान और चीन की सीमा का मसला पेश है, उसमें एक मैकमोहन लाइन मानी गयी है, जिसे एक पक्ष कतई नहीं मानता है, कुछ थोड़ा आक्रमण भी करता है, ज्यादा आक्रमण नहीं करता है, यूँ कहकर ही हम उसे नहीं मानते, लेकिन मैत्री के लिए हम आक्रमण करना नहीं चाहते। परन्तु उसमें थोड़ा फर्क करना जरूरी है। दूसरा पक्ष कहता है कि हम इस लाइन को मानते हैं, यद्यपि इधर-उधर थोड़ा फर्क हो सकता है। ये जो दो बातें आमने-सामने आती हैं, ये शाब्दिक बातें हैं। हमें क्षोभ के लिए कोई प्रयोजन नहीं है और क्षोभ से मसला हल नहीं होगा। हमें समझना चाहिए कि हमारी सीमा दो हजार मील की लम्बी है, जिसे हममें से किसीने देखा नहीं है।

पुराने जमाने में बहुत-सी बातों का पता नहीं चलता था, इसलिए क्षोभ नहीं होता था। लेकिन आज अब पता चलता है, फिर भी क्षोभ नहीं होना चाहिए। तुकाराम ने कहा था, "हे भगवान, ज्ञानोत्तर अज्ञान याने ज्ञान के बाद भी अज्ञान रहने दे।" जानकारी के बाद भी चित्त की अक्षोभ्य दशा हो, ऐसा होगा, तभी इस जमाने में मसले हल होंगे, नहीं तो कतई हल नहीं होंगे।

दुतरफा परिवर्तन

अगर हम इस बात को महसूस करें तो और हमारा मानवता का जो मूलभूत विश्वास है, उसे हम नहीं खोयें तो मसले हल हो सकते हैं।

www.vinoba.in

परिवर्तन-शक्ति पर हमारा विश्वास होना चाहिए और परिवर्तन में जैसे सामनेवाले के परिवर्तन की बात आती है, वैसे ही हमारे भी परिवर्तन की आती है। हम उसका परिवर्तन करेंगे, इसमें हम मानते हैं, वैसे ही वह भी हमारा परिवर्तन कर सकेगा, इसमें मानना चाहिए। हम उसका परिवर्तन करनेवाले हैं और हमारा हृदय सर्वथा अपरिवर्तनीय है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। बल्कि हमारे भी हृदय में कई ग्रन्थियाँ, गाँठें हैं, जड्बे पैदा होते हैं, यह मानना चाहिए और शान्त मन से सोचना चाहिए कि हमारा भी परिवर्तन हो सकता है।

इस तरह मानकर हम चलें तो मसले हल हो सकते हैं। इसीको मैं सादी भाषा में कहता हूँ कि मन के ऊपर उठकर सोचना चाहिए। इन दिनों बार-बार मेरे मन में यह विचार आता है कि हमें समझना चाहिए कि इस जमाने में क्षोभ के लायक कोई मसला पैदा नहीं होता है। वह पुरान जमाना था, जब कि मसले पैदा होते थे, उनकी जानकारी नहीं होती थी और जब जानकारी हो जाती थी तो क्षोभ पैदा होता था। आज हमें हर चीज की जानकारी हासिल होती है। इसलिए यह जरूरी है कि क्षोभ न हो और हमें समझना चाहिए कि कोई भी मसला आमने-सामने बैठकर हल हो सकता है, उसमें लेन-देन हो सकती है।

सत्याग्रही नहीं, सत्यग्राही !

दोनों बाजू मन ही काम करता रहेगा तो मसले हल नहीं होंगे। हमने राज्य-पुनर्रचना के मामले में जो हुआ, वह सब देखा है। उस वक्त हर प्रान्त दावा करता था कि फलानी जगह हमारी ही है। एक प्रान्त के कुल लोग एक बाजू और दूसरे प्रांत के कुल लोग दूसरी बाजू, यह हमने देखा है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसी तरह दावे और प्रति-दावे पेश होंगे। लेकिन हर हालत में हमारे मन में यह हो कि जैसे हम परिवर्तन कर सकते हैं, वैसे सामनेवाला भी हमारा परिवर्तन कर सकता है और क्षोभ का कोई कारण नहीं है।

इसके आगे जो सत्याग्रही हो, वह अक्षोभ्य हो। उसे मन अक्षुब्ध रखना चाहिए। सत्याग्रही की कसौटी है अक्षोभ्यता। उसके सत्य के कारण सामनेवाले के मन में भी अक्षोभ पैदा होना चाहिए। वह सत्याग्रही नहीं, सत्यग्राही हो। सत्यग्राही वह होगा, जो सत्य का दावा नहीं छोड़ेगा, लेकिन सामनेवाले के पास सत्य है ही नहीं, ऐसा नहीं मानेगा, बल्कि उसके पास भी सत्य हो सकता है, ऐसा मानेगा।

सत्य का एक अंश मेरे पास है, जिसे मैं नहीं छोड़ूँगा, लेकिन दूसरा अंश सामनेवाले के पास हो सकता है, यह मानना चाहिए। वह अंश कम-बेसी हो सकता है। उसकी चर्चा धीरे-धीरे तटस्थ बुद्धि से की जा सकती है। ऐसा सत्याग्रही समाज बनाना है। सत्याग्रही वह होगा, जो सत्य को ग्रहण करनेवाला, उससे चिपके रहनेवाला होगा। अपने पास सत्य का जो अंश है, उसे न छोड़नेवाला होगा और सामनेवाले के पास जो सत्य का अंश है, उसे ग्रहण करने की उसकी तैयारी होगी। ऐसा सत्यग्राही मन और समाज हम बनाना चाहते हैं। यह सत्यग्राही शब्द मुझे बंगाल और उड़ीसा के भक्ति-साहित्य में चलनेवाले भावग्राही शब्द से सूझा। उसमें कहा गया है कि भगवान भावग्राही होते हैं, भाव को ग्रहण करते हैं। मैं शब्द की खोज में था तो मुझे यह नया सत्यग्राही शब्द सूझा, जिससे मुझे तसल्ली हुई। मैं चाहता हूँ कि हम सब सत्यग्राही बनें। इसमें अपने सत्य के साथ चिपके रहने और सामनेवाले के पास जो सत्य है, उसको ग्रहण करने की तैयारी रखने की जो बात है, वह मन के ऊपर उठे बगैर संभव नहीं है।

सत्य किसकी 'इस्टेट' है ?

सामनेवाले के पास भी सत्य है, आंशिक नहीं, पूर्ण सत्य है। ऐसा वह मानता है। ऋग्वेद में युद्ध के लिए कई शब्द आये हैं, इसमें एक शब्द है : 'मम सत्यम्'। यास्काचार्य ने कहा 'मम सत्यं युद्धम्' याने मम सत्य ही युद्ध है। ऋग्वेद में कहा है : 'त्वां जनाः मम सत्येषु इन्द्र।' हे इन्द्र, लोग तुझे 'मम सत्य' में अपनी मदद के लिए बुलाते हैं। हमने देखा कि महायुद्ध में दोनों बाजू ईसाई राष्ट्र थे, जो अपनी फतह हो, इसलिए परमेश्वर के पास मदद माँगते थे। दोनों पक्ष युद्ध में तेरी मदद माँगते हैं, ऐसा भगवत्-वर्णन आता है। उसमें युद्ध के लिए 'मम सत्य' कहा गया है। सत्य मेरा है, इसका नाम है युद्ध। सत्य मेरा ही है, सामनेवाले का सत्य नहीं है। सत्य मेरे बाप की इस्टेट है, सामनेवाले का उसपर कोई हक नहीं है, इस तरह जब आप मानते हैं तो लड़ाई के सिवाय बात नहीं है। फिर उस लड़ाई को आप निःशस्त्र लड़ाई का रूप दें तो भी उससे सत्यग्राही नहीं बनेगा। मैं कहना यह चाहता हूँ कि हमारी जमात की सत्यग्राही वृत्ति रहे तो हमारी जमात छोटी होने पर भी हिन्दुस्तान की बहुत सेवा करेगी।

विश्वास न खोयें

दो साल पहले येलवाल परिषद हुई थी। उसके छह महीने के बाद यह विचार निकला था कि जब कि हम शांति-सेना बनाना चाहते हैं तो शांति-सेना के लिए बहुत अनुकूलता होगी, अगर भिन्न-भिन्न राजनैतिक आन्दोलन चलाने के विषय में कुछ साधारण नीति तय की जाय। और जैसे येलवाल में सब पक्षों के नेता इकट्ठा हुए थे, वैसे ही फिर से इकट्ठा हों और कुछ फैसले करें। सर्व-सेवा-संघ इस प्रकार की परिषद बुला सके तो बुलाये, ऐसा विचार चल रहा था तो नेताओं के साथ भी मेरी बात हुई थी। मैं उसकी तफसील में नहीं जाना चाहता हूँ, लेकिन हमारे सामने सवाल यह आता है कि अगर हम इन दिनों परिषद बुलाते तो कुछ काम बनता या नहीं, उससे कोई प्रयोजन निकलता या नहीं, लेकिन उन दिनों वह सवाल जितना कठिन था, उससे ज्यादा कठिन आज हुआ है। क्योंकि आज शब्द-शक्ति का भरोसा टूट ही चुका है। दो साल पहले उतना टूटा नहीं था। खास कर केरल में जो बनाव बने, उसका परिणाम यह हुआ कि किसी नेता का कोई विश्वसनीय शब्द है, ऐसा मानने के लिए लोग राजी नहीं हैं। शब्दों में जहाँ अविश्वास पैदा हुआ, वहाँ आमने-सामने बैठकर बात करे और किसी नतीजे पर आये, यह भी सम्भव नहीं है।

[चालू]

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी

www.vinoba.in